भारतीय सस्कृति में दान की महिमा

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतीय ग्रंथों में दान की महिमा का वर्णन उत्कृष्ट रूप से किया गया है। दान कई प्रकार का होता है। उसमें सर्वोत्कृष्ट दान शिक्षा दान है। शिक्षा के द्वारा मानव के व्यक्तित्व का निर्माण किया जाता है जिससे वह व्यक्ति आगे चलकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर सके। परिवार नागरिकता की प्रथम पाठशाला है। बालक जो कुछ भी सीखता है वो अपने परिवार से सीखता है। परिवार में माता–पिता, दादा–दादी, भाई–बहिन अनेक लोग रहते है। सभी शांति और सौहार्द्र पूर्वक जीवन यापन करते है। बालक परस्पर सबके व्यवहार को देखता है और आगे चलकर वह भी वैसा ही हो जाता है। परिवार की परिस्थिति बालक के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण होती है जैसा वातावरण रहता है वैसा ही बालक का निर्माण हो जाता है। दान, धर्म, पाप, पुण्य, अच्छा, बुरा सबकुछ बालक देखकर के सीखता है और समाज या राष्ट्र के निर्माण में भागीदार होता है।

दान विशेष रूप से धन का किया जाता है। जरूरतमंदों को उसकी आवश्यकता के अनुसार दान किया जाने चाहिए। समाज में बहुत से धन संपन्न व्यक्ति रहते है। धन का उपयोग एक मालिक के रूप में नहीं बल्कि ट्रस्ट के रूप मे होना चाहिए। धन की तीन गतियां बतलायी गई है– दान, भोग और विनाश। सबसे अच्छी गति दान की दान देना है। जरूरतमंदों को उसकी आवश्यकता के अनुसार दान देना चाहिए। धन की दूसरी स्थिति भोग है यदि आदमी के पास धन–दोलत है तो उसका उपभोग करना चाहिए। त्यागपूर्वक किया गया उपभोग सबसे अच्छा उपभोग है। किसी के धन को शक्तिपूर्वक नहीं लेना चाहिए। धन का उपभोग करने से परिवार संतुष्ट रहता है। धार्मिक क्रियाओं में उत्सवों में तीर्थयात्रा में और दूसरों को देने में धन का उपयोग होना चाहिए। यदि धन का उपयोग नहीं किया जाता है तो तीसरी स्थिति धन की विनाश है। घर में इकट्ठा किया हुआ धन या तो चोर चुरा ले जाता है या इनकम टैक्स के अधिकारी उसे सरकारी खजाने में जमा करा देते है। धन को उचित रीति से कमाना चाहिए। अनुचित रूप से अर्जित किया हुआ धन अधिक समय तक नहीं टिकता। धन का तो विनाश

होता ही है उसी के साथ परिवार का भी विनाश हो जाता है। दान की महिमा से परलोक सुधरता है। हमारे देश में बहुत से दानशील व्यक्ति हुए है जिनका नाम आज आदर के साथ लिया जाता है। कर्ण महादानी था उसने अपने कवच कुण्डल को दान कर दिया था। भगवान विष्णु ने बामन रूप धारण कर राजा बलि से साढ़े तीन पग भूमि दान में याचना की थी तो बलि ने तीन पग भूमि देकर तीनों लोक को दे दिया और अंत में आधे पग में अपने शरीर का भी दान दे दिया। ऐसे महर्षि दधीचि ने अपने शरीर का दान देकर विश्व कल्याण किया था। आज ऐसे ऋषियों महर्षियों का नाम दान–दाताओं के श्रेणी में आदर के साथ लिया जाता है। जीवन में कुछ देना हो तो विधेयात्मक दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। यदि मनुष्य का दृष्टिकोण विधेयात्मक रहता है तो उसके द्वारा दिया हुआ दान सफल होता है और यदि निषेधात्मक होता है तो वह दान सफल नहीं होता है। यदि मनुष्य का दृष्टिकोण निषेधात्मक रहता है तो वह उसकी ऊर्जा को नष्ट कर देता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, दुर्गुण, हिंसा आदि नकारात्मक वस्तुए है इनकास सर्वथा त्याग करना चाहिए। मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये धन की आवश्यकता होती है। धन को आवश्यक वस्तुओं पर खर्च करना चाहिए। जिससे धन का सदुपयोग हो सके। मानव का आचार–विचार यदि शुद्ध रहता है तो उसके भाव भी शुद्ध रहते है। शुद्ध भाव से उसका विकास होता है। सभी प्राणियों के प्रति मंगल भावना रखनी चाहिए–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।

सभी प्राणी सुखी हो, सभी निरोग हो, सभी कल्याण का दर्शन करें और किसी को भी दुःख न हो। यह सभी प्राणियों के प्रति मंगल भावना है। ऐसा दृष्टिकोण विधेयात्मक दृष्टिकोण है। इसमें जगत कल्याण की भावना छिपी हुई है। विधेयात्मक दृष्टिकोण से शरीर की ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होती है। मनुष्य में देवत्व के गुण आ जाते है और यदि दृष्टिकोण निषेधात्मक रहता है तो वह व्यक्ति अधोगामी होता है और उसकी प्रवृत्ति राक्षसी हो जाती है। रावण बहुत बड़ा ज्ञानी था लेकिन उसका चिंतन निषेधात्मक था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह जीवन भर असंतुष्ट रहा और उसका विनाश भी हो गया। मनुष्य का यदि ऐसा दृष्टिकोण रहता है तो

उसका विनाश निश्चित है। उपनिषदो में महर्षि याज्ञवल्क के दो पत्नियों का वर्णन है। एक का नाम था मैत्रेयी और दूसरे का नाम था कात्यायनी। महर्षि याज्ञवल्क ने एक दिन दोनों को बुलाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का दान करना चाहा। इनमें से एक ने तो महर्षि की सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त कर ली। किन्तु एक ने कहा जिस सम्पत्ति को प्राप्त करने के पश्चात् मुझे अमरत्व प्राप्त हो तो मुझे वह सम्पत्ति प्रदान कीजिए। सम्पत्ति तो विनाशी है आज है कल नहीं रहेगी, किन्तु आत्मा अजर–अमर है इसको प्राप्त कर लेने से मनुष्य को अभय दान मिल जाता है और वह सदैव के लिए अमर हो जाता है। अध्यात्म का उपदेश ही आत्मदान है। यही दान प्रशस्त दान कहलाता है। इसको प्राप्त करने के बाद मनुष्य के लिए कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रहता।